Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2025 SHISRRJ | Volume 8 | Issue 1
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

आरण्यकों में प्रतिपादित विषयों का परिचयात्मक विमर्श

डॉ.बालकृष्ण प्रजापति
शोध-मार्गनिर्देशक, (प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष)
संजय गाँधी स्मृति पी.जी.महाविद्यालय, गंजबासौदा,
(मध्यप्रदेश)

गौतम आर्य
शोधच्छात्र, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय, भोपाल,
(मध्य प्रदेश)

Article Info

Accepted : 02 Jan 2025
Published : 15 Jan 2025
Publication Issue :
January-February-2025
Volume 8, Issue 1
Page Number : 197-202

शोधसारांश - आरण्यकों के प्रतिपाद्य विषय सम्बन्धित स्पष्टता पूरी हुई मानी जा सकती है । जिससे ज्ञात होता है कि अन्य विषयों के साथ ही प्राणविद्या व प्रतीकोपासना आरण्यकग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है ।प्राण की इसी सर्वव्यापकता तथा अध्यात्मिकता का विकास आगे चलकर औपनिषदिक ब्रह्मचिन्तन

मुख्यशब्द- आरण्यक, सर्वव्यापकता, प्रतीकोपासना, अध्यात्मिकता, औपनिषदिक, ब्रह्मचिन्तन।

मानव जीवन का लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति है। वेद धर्म-अर्थ- काम व मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए प्रेरक एवं सहायक होते हैं । वेद ज्ञान विज्ञान का भण्डार संस्कृति के आधार एवं कर्तव्याकर्तव्य के बोधक होते हैं । भारतीय विचार परम्परा के अनुसार वेद ही इस संसार क मूल हैं। संस्कृत साहित्य की परम्परा में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत भी वेद है। वेद का अर्थ है ज्ञान राशि। किन्तु ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेद सत्य तथा ज्ञान स्वरूप है। वेद का प्रत्येक वचन उस सर्वज्ञ ईश्वर का वचन है एवं ईश्वरप्राप्त है। वेद के मर्मज्ञों ने संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् इन चारों को समग्र रूप में वेद माना है।

वैदिक वाङ्मय में मन्त्र-संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों के उपरान्त आरण्यक ग्रन्थों का क्रम आता है। आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट भाग माने जाते हैं । आरण्यक शब्द से सामान्यत: **'अरण्य में होने वाला'** अथवा **'अरण्य से सम्बन्धित'** अर्थ ग्रहण किए जाते हैं, किन्तु वैदिक विद्वानों के विमर्श से ज्ञात होता है कि इस शब्द के वास्तविक अर्थ में कुछ अनिश्चितता दिखाई देती है। सायणचार्य ने ऐतरेय ब्राह्मण की भूमिका में जहां **'आरण्यकरूपं ब्राह्मणम्'**[1] लिख कर आरण्यक शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है, वहीं दूसरी जगह ऐतरेय आरण्यक की भूमिका में **'अरण्ये एव पाठ्यत्वात् आरण्यकमितीर्यते'**[2] यह लिखते हुए आरण्यक शब्द की व्याख्या की है।

शाश्वत एवं अपौरुषेय वेद ऋषि-वाक्य के रुप में जब प्रकट होते हैं,तो प्रवृत्ति-मार्ग एवं निवृत्ति-मार्ग को दृष्टिगत रखते हुए ही ऋगादि चतुष्टय में अभिव्यक्त होते हैं। भौतिक जीवन के शास्त्रीय कर्मानुष्ठान में शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि हो जाने पर भारतीय जीवन पद्धति में मनुष्य को देवत्व प्राप्त हो जाता है। ततश्च आध्यात्मिक जीवन की अभिलाषा की पूर्ति

Copyright © 2025 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

हेतु "आत्मा वा अरेद्रष्टव्य: " के सन्देश का भी मनुष्य मनन करता है। लेकिन इन तीनों ही जीवन पद्धतियों में तारतम्य बनाने की वैज्ञानिक प्रक्रिया का जो उपदेश देता है–वह वेद का आरण्यक भाग ही है।

मन्त्र–संहिताओं और ब्राह्मण–ग्रन्थों के समान हीतत्सम्बन्धित अनेक आरण्यकोंकीरचनाकीगयी । किन्तु जैसे वर्तमान में कुछ ही संहिताएं और ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उसी प्रकार अभी निम्नोक्त आरण्यक ही उपलब्ध होते हैं –

i. **ऐतरेय आरण्यक** –इनमें से प्रथम **ऐतरेय आरण्यक** का नाम साक्षात् तत्सम्बद्ध ऐतरेय ब्राह्मण के द्रष्टा ऋषि **ऐतरेय** के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

ii. **शांखायन आरण्यक-** इसी तरह **शांखायन आरण्यक** का नाम शांखायन ब्राह्मण के द्रष्टा **ऋषि शांखायन** के नाम से ही विख्यात हुआ है । इस आरण्यक को नामान्तर से**कौषीतकि आरण्यक** भी कहा जाता है, जो कि शांखायन के गुरु थे ।

iii. **बृहदारण्यक-** शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम छ: अध्याय **'बृहदारण्यक'** नाम से सुप्रसिद्ध हैं । इस आरण्यक का बृहदारण्यक नाम इसके आकार की दृष्टि से उचित ही प्रतीत होता है । क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में जिस प्रकार शतपथ ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणग्रन्थों की अपेक्षा विस्तृतकाय है, उसी के समान बृहदारण्यक नामक यह आरण्यक भी अपने नामानुसार सभी आरण्यकों में **बृहत्तम स्वरूप** वाला आरण्यक ग्रन्थ है ।

iv. **तैत्तिरीय आरण्यक-** कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय संहिता से सम्बद्ध **'तैत्तिरीय आरण्यक'** का नाम इसके 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' से सम्बन्धित होने से विख्यात हुआ । जो कि तैत्तिरीय ब्राह्मण के द्रष्टा **ऋषि 'तित्तिर'** की रचना होने से उनके नाम से विख्यात है । इस प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण और उससे सम्बन्धित तैत्तिरीय आरण्यक का यह तैत्तिरीय नाम उसके कर्ता महर्षि तित्तिर के नाम से निष्पन्न हुआ है ।

v. **मैत्रायणी आरण्यक- मैत्रायणी आरण्यक** का नाम शुक्ल यजुर्वेदसंहिता की मैत्रायणी शाखा के नाम से प्रसिद्ध है ।

vi. **तवल्कार आरण्यक- 'तवल्कार आरण्यक'** का नाम इसके चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक् में वर्णित प्रख्यात अंश **तवल्कार नामक** विशिष्ट भाग के नाम पर पडा है । (जिसे केन उपनिषद् के नाम से भी जाना जाता है ।) महर्षि **जैमिनि** द्वारा रचित इस आरण्यक को **जैमिनीयोपनिषद्-ब्राह्मण** के नाम से भी जाना जाता है ।

आरण्यकों में ज्ञानमार्ग के साथ ही कर्ममार्ग का भी समन्वय दृष्टिगत होता है । उपनिषद् ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक प्रतिपादित ब्रह्मज्ञान के मूलाधार के रूप में आरण्यक ग्रन्थ ही स्वीकार किए जाते हैं । आरण्यक ग्रन्थों को ब्राह्मण ग्रन्थोक्त कर्मकाण्ड एवं उपनिषद् ग्रन्थों में वर्णित सूक्ष्म आध्यात्मिक चिन्तन के मध्य एक कडी के रूप में माना जा सकता है । आरण्यकों में यज्ञ की दर्शनिक व्याख्या की गई है । जिसके लिए अध्यात्मवाद, प्रतीकवाद, रहस्यवाद एवं दर्शन जैसे विषयों का पर्याप्त आश्रय ग्रहण किया गया है । इस विषय के अतीव सूक्ष्म तथा गूढ होने से इनका अध्ययन एवं अध्यापन अरण्य के एकान्त में विशिष्ट रूप से दीक्षित शिष्यादि के साथ किया जाता था । इस गूढ एवं रहस्यात्मक विषय को सामान्य व्यक्ति न तो समझ ही पाता था और न ही इससे सम्बन्धित विषय चर्चा ही कर पाता था । इसलिए ग्राम एवं नगर के कोलाहल और

व्यस्तता से दूर अरण्य के एकान्त में अरण्यों पर विचार–विमर्श करने हेतु इनका अध्ययनाध्यापन किया जाता था । इसीलिए अत्यन्त गूढ एवं रहस्यात्मक विषयवस्तु के कारण इन्हें आरण्यक कहा गया ।

आरण्यक ग्रन्थ - आरण्यक ग्रन्थों का उद्भव नैसर्गिक प्रक्रिया के अनुरूप ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् हुआ है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना मानवीय प्रवृत्ति का परिणाम है। वेदों और ब्राह्मणों में वर्णित यज्ञ–प्रक्रिया कष्टसाध्य,दुर्बोध और नीरस होने के कारण अरुचिकर होती जा रही थी, अत: आत्मिक शान्ति के लिए अध्यात्म की आवश्यकता पड़ी और स्थूल द्रव्यमय यज्ञ से सूक्ष्म आध्यात्मिक यज्ञ की ओर प्रवृत्त हुई।

दूसरा कारण यह था कि यज्ञ गृहस्थ के लिए है, वानप्रस्थ संन्यासियों केलिए आत्मतत्त्व और ब्रह्मविद्या के ज्ञान के लिए अध्यात्मपरक ग्रन्थों की आवश्यकता थी।आवश्यकता आविष्कार की जननी है, अत: आरण्यकों की सृष्टि हुई।

विषयवस्तु की दृष्टि से आरण्यक और उपनिषदों में साम्यता दिखाई देती है । इसीलिए बृहदारण्यक आदि आरण्यक ग्रन्थों को उपनिषद् के रूप में भी स्वीकार किया जाता हैं । जिन श्रौत यज्ञों पर ब्राह्मण ग्रन्थों में विवेचन हुआ है, उन्हीं यज्ञों पर आरण्यकों में भी विचार किया गया है । इस साम्यता के बाद भी ब्राह्मणों और आरण्यकों के वर्ण्यविषयों में कुछ पार्थक्य भी प्रतीत होता है । दोनों में यह भेद उनकी विवेचना पद्धति पर है । ब्राह्मणों मे यज्ञ के स्थूल रूप पर विचार किया जाता है, अर्थात् किसी यज्ञ विशेष की कोई क्रिया क्यों और किस प्रकार की जाती है ? इस प्रकार का विवेचन अधिकतया ब्राह्मणों में मिलता है ।

आरण्यकों का मुख्य लक्ष्य ब्राह्मण ग्रन्थों के समान कर्मानुष्ठान का प्रवर्तन करना न होकर चिन्तन करना है । अधिकांश आरण्यकों में बाह्य औपचारिक यज्ञ को आन्तरिक मानस यज्ञ की अभिव्यक्ति कहा गया है । आरण्यकों में समस्त जगत् ही सूक्ष्मरूप में यज्ञमय होते हुए भी स्थूलता से रहित प्राणमय दिखाई देता है । यह यज्ञ विश्व के प्राण की तरह नियामक के रूप में कार्य करता है ।

आरण्यक ग्रन्थ अपनी भाषा–शैली की दृष्टि से ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों के मध्य संयोजक के रूप में कार्य करते हैं । वैदिक संहिताओं व ब्राह्मणग्रन्थों में विशेष रूप वर्णित यज्ञानुष्ठान विषयक कर्मकाण्ड की भौतिक व्याख्या से आध्यात्मिक व्याख्या की ओर प्रवृत्त होते समय निर्मित होने वाले इस साहित्य में भौतिकता के साथ ही आध्यात्मिकता का प्रभाव भी समाविष्ट है । वैदिक वाङ्मय के अनुसार आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन, अध्यात्मिकज्ञान आदि माना जा सकता है । आरण्यकों में यज्ञ के दार्शनिक एवं अध्यात्मिक पक्षों का विवेचन उपलब्ध होता है । जिससे ज्ञात होता है कि आरण्यक का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ मात्र न होकर, यज्ञ – यागादि के अन्दर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्य की विवेचना करना है । इस प्रकार यज्ञानुष्ठान के साथ ही यज्ञान्तर्गत दार्शनिक विचार भी आरण्यकों का मुख्य विषय है ।

आरण्यकों के रचयिता - अधिकांश आरण्यक ग्रन्थ सम्बद्ध ब्राह्मणों के अन्त्य भाग है। अत: उन ब्राह्मणग्रन्थों के रचयिता ही आरण्यकग्रन्थों के रचयिता माने जाते हैं। यथा – ऐतरेय आरण्यक के तृतीय आरण्यक तक के प्रवक्ता महीदास है,चतुर्थ आरण्यक के प्रवक्ता आश्वलायन और पंचम आरण्यक के शौनक है।शांखायन आरण्यक के प्रवक्ता गुण शांखायन है।बृहदारण्यक के प्रवचनकर्ता महर्षि याज्ञवल्क्य है।तैत्तिरीय आरण्यक और मैत्रायणीय आरण्यक दोनों ही कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक है। अत: दोनों के ही ऋषि कठ बताए गए है।तवलकार आरण्यक जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ही है। इसके प्रवक्ता जैमिनी मुनि है।

उपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ -

सम्प्रति केवल[२क] आरण्यक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। वेदों के अनुसार इन्हें हम इस प्रकार रख सकते हैं –

1. ऋग्वेदीय – [१].ऐतरेय[२].शांखायन ।
2. शुक्लयजुर्वेदीय –[३].बृहदारण्यक ।
3. कृष्ण यजुर्वेदीय –[२२].तैत्तिरीय[२३].मैत्रायणीय आरण्यक ।
4. सामवेदीय –[३क].तवलकार आरण्यक ।

अथर्ववेद से सम्बद्ध कोई भी आरण्यक ग्रन्थ अद्यावत् मुद्रितावस्था में प्राप्त नहीं होता है।

आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय -आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्वरूप हैं। उपनिषदों में आत्मा,परमात्मा,सृष्टि उत्पत्ति,ज्ञान,कर्म,उपासना और तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। उसी तत्त्वज्ञान का प्रारम्भिक रूप हम आरण्यकों में पाते है।

वैदिक संहिता के मन्त्रों में जिस विद्या का सङ्केत मात्र ही उपलब्ध होता है, आरण्यक ग्रन्थों में उसका भी विश्लेषण उपलब्ध होता है । जिस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में गृहस्थाश्रम के लिए यज्ञविधान और अन्य आनुष्ठानिक कर्म में प्रतिपादन किया गया है, उसी प्रकार वानप्रस्थाश्रम के जो भी यज्ञ, हौत्र, महाव्रतादि कर्म होते हैं, उन सभी की व्याख्या एवं विधान आरण्यक ग्रन्थों में प्रतिपादित किए गए हैं । आरण्यक ग्रन्थ वानप्रस्थियों के कर्मकाण्ड सम्बन्धित ग्रन्थ होने के साथ-साथ ही यज्ञ की अत्यन्त शोभनीय आध्यात्मिक व्याखा से भी परिपूर्ण हैं । आरण्यक ग्रन्थों के प्रमुख विषयों में प्राणविद्या एवं प्रतीकोपासना है । ऐतरेय आरण्यक में प्राणविद्या का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है । प्राण की प्रसंशा में कहा गया है कि श्रुति द्वारा कहे गए प्राण नामक 'अकार' को जानकर कवि (ऋषिगण) स्वर्गलोक या परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करता है –

'यस्मिन्नामा समतृप्यन्च्छृतेऽधि तत्र देवा: सर्वयुजो भवन्ति ।
तेन पाप्मानमपहत्य ब्रह्मभा स्वर्गं लोकमप्येति विद्वान्' ॥[3]

प्राणविद्या का प्रतिपादन करना भी आरण्यक ग्रन्थों के प्रमुख वर्ण्य-विषयों में से एक है । इस विचार की पुष्टि में ऐतरेय आरण्यक के सभी इन्द्रियों में प्राणों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि 'प्राण इस विश्व का धारक हैं । प्राण की ही शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी तरह सबसे बडे प्राणी से लेकर चींटी तक समस्त जीव इस प्राण के द्वारा ही विधृत हैं' –**"सोऽयमाकाश: प्राणेन बृहत्या विष्टब्ध:, तद्यथायमाकाश: प्राणेन बृहत्याविष्टब्ध एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्य: प्राणेन वृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्"।**[4]

समस्त विश्व के आश्चर्यों की गोचरता प्राणों के ही माध्यम से है । प्राण समस्त विश्व के धारक हैं, जो सर्वव्याप्त हैं । इस तरह प्राण समस्त इन्द्रियों का एकमात्र आधार होने से समस्त अनुभूत और गोचर विश्व का आधार है। अत: इसे गोपा (रक्षक) भी कहा गया है । मनुष्य का जीवन तभी तक चलता है जब तक उसके शरीर में प्राण है। जैसे कि कहा भी गया है –**'यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायु:'** अर्थात् प्राण ही अन्तरिक्ष और वायु का सर्जक है। प्राण जगत् का स्रस्टा तथा पिता (पालक) है । इस बात का उल्लेख ऐतरेय आरण्यक में इस प्रकार किया गया है –**"प्राणेन सृष्टावन्तरिक्षं वायुश्च ।अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति अन्तरिक्षं अनुशृण्वन्ति। वायुस्मै पुण्यं गन्धमावहति । एवमेतौ प्राणपितरं परिचरतोऽन्तरिक्षं च वायुश्च''।**[5]

आरण्यकों में प्राण को कालचक्र बताया गया है। जीव को प्राण की उपासना ब्रह्मा के रूप में करनी चहिए । मैत्रायणी आरण्यक में प्राण को अग्नि एवं परमात्मा कहा गया है– **'प्राणौग्नि: परमात्मा'**[6] । तैत्तिरीय आरणयक में काल विषयक विशद् वर्णन उपलब्ध होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में जहां **'यज्ञोपवीत'** का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है[7], वहीं यज्ञोपवीत का महत्त्व इस आरण्यक में बताया गया है[8] । जिसके अनुसार यज्ञोपवीत को धारण करके जो यज्ञ एवं पठन आदि कार्य किए जाते हैं । वे सब कार्य यज्ञ की श्रेणी में आता है ।

वर्तमान समय में अधिकतया बौद्ध भिक्षुओं हेतु प्रयोग किए जाने वाले **'श्रमण'** शब्द का प्रथम प्रयोग तैत्तिरीय आरण्यक एवं बृहदारण्यक उपनिषद् में उपलब्ध होता है –**'वातरशना ह वा ऋषय: श्रमणा'**[9] । यह श्रमण शब्द **'प्रव्रज्या'** से सम्बन्धित है । प्रव्रज्या का अभिप्राय ब्रह्मज्ञान के लिए गृहत्याग करके वन की ओर प्रस्थान करना है। इस विषय में प्रथम प्रयोग बृहदारण्यक की निम्नोक्त उद्धरण में उपलब्ध होता है –**"एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति । एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तो प्रव्रजन्ति' "।**[10]

आरण्यकों में कुछ स्थलों पर ऐतिहासिक तथ्यों का भी प्रयोग दिखाई देता है । गंगा– यमुना के मध्य में स्थित क्षेत्र को आरण्यकों में बहुत पवित्र कहा गया है **'नमो गंगायमुनयोर्मध्ये य वसन्ति'** ।[11] इस क्षेत्र में कुरुक्षेत्र और खाण्डव वन नामक ऐतिहासिक स्थल आते हैं । इसके अतिरिक्त शांखायन आरण्यक में उशीनरा, कुरु–पांचाल, मत्स्य, काशी, विदेह, जनपदों का वर्णन प्राप्त होता है–**'उशीनरेषु, मत्स्येषु, कुरु-पांचालेषु, काशीविदेहेषु'**।[12] मैत्रायणी आरण्यक में भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के नामों का उल्लेख मिलता है।[13]**मण्डूकप्लुतिन्याय** से आरण्यक ग्रन्थों में वैदिक संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में निहित विषयों का विस्तृत रूप से प्रतिपादन किया गया है।

आरण्यकग्रन्थों का महत्त्व -

- आरण्यक ग्रन्थ –ब्राह्मणों और उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है। ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्यक ग्रन्थ है।
- सकाम से निष्काम की प्रवृत्ति – श्रौत यज्ञ सकाम कर्म है, अत: निष्काम अध्यात्म की ओर प्रवृत्ति मानव की प्रकृति है। गृहस्थ के लिए सकाम कर्म उचित है, परन्तु वानप्रस्थ और संन्यासी के लिए हेय है, अत: अध्यात्म ज्ञान हेतु आरण्यकों की आवश्यकता है।
- स्थूल से सूक्ष्म की ओर – आरण्यक स्थूल से सूक्ष्म,भौतिकतावाद से अध्यात्म की ओर मूर्त से अमूर्त ओर ले जाने वाले है।
- दार्शनिक चिन्तन – आरण्यकों में यज्ञप्रक्रिया के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है ।
- वेदों का नवनीत – महाभारत का कथन है कि –

  नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा ।
  आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ॥

- डॉ.राधाकृष्णन् ने आरण्यकों के महत्व के विषय में कहा है कि ये वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए आवश्यक अध्यात्म की सामग्री देते है।

➢ डॉ मैकडानल ने और प्रो.ओल्डेनबर्ग ने भी आरण्यकों को अध्यात्म- ग्रन्थ बताते हुए इनकी प्रशंसा की है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के माध्यम से आरण्यकों के प्रतिपाद्य विषय सम्बन्धित स्पष्टता पूरी हुई मानी जा सकती है । जिससे ज्ञात होता है कि अन्य विषयों के साथ ही प्राणविद्या व प्रतीकोपासना आरण्यकग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है ।प्राण की इसी सर्वव्यापकता तथा अध्यात्मिकता का विकास आगे चलकर औपनिषदिक ब्रह्मचिन्तन धारा में हुआ है । अत: आरण्यकों अध्ययन नितान्त आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। वेद के गूढ़ार्थ को समझने एवं अध्ययन हेतु आरण्यकग्रन्थों का महत्त्व नितान्त आवश्यक है।

सन्दर्भग्रन्था-

1. सायण, ऐतरेय ब्राह्मण, भूमिका
2. सायण, ऐतरेय आरण्यक, भूमिका
3. ऐतरेय आरण्यक 2.3.8.5.
4. ऐतरेय आरण्यक
5. ऐतरेय आरण्यक
6. मैत्रायणी आरण्यक 6/9
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/10/9-12.
8. तैत्तिरीय आरण्यक 2/1/1
9. तैत्तिरीय आरण्यक 2/7/1
10. बृहदारण्यक 4/4/22.
11. तैत्तिरीय आरण्यक2/20
12. शांखायन आरण्यक 6/1
13. मैत्रायणी आरण्यक ¼